दैनिक जागरण
समय सबसे बड़ी पूंजी है

अभिव्यक्ति की आजादी

सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के संबंध में अभद्र ट्वीट करने वाले स्वतंत्र पत्रकार प्रशांत कनौजिया को रिहा होना ही था, लेकिन इस रिहाई के उपरांत भी यह प्रश्न अनुत्तरित है कि आखिर अभिव्यक्ति की आजादी का मनमाना इस्तेमाल करने वालों पर लगाम कैसे लगाई जाए? इस सवाल का जवाब इसलिए तलाशा जाना चाहिए, क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर किसी को कुछ भी कहने या करने की इजाजत दी जाएगी तो फिर भारत जैसे देश में हालात बिगड़ सकते हैं। फर्जी खबरों के इस दौर में हर किसी को और खासकर खुद को पत्रकार कहने वाले को तो कहीं अधिक जिम्मेदारी का परिचय देना चाहिए, चाहे वह किसी मीडिया संस्थान संस्था से जुड़ा हो या फिर स्वतंत्र तौर पर सक्रिय हो। जिम्मेदारी का परिचय इसलिए भी दिया जाना चाहिए, क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता असीम नहीं है। प्रत्येक अधिकार किसी न किसी कर्तव्य का भी बोध कराता है, लेकिन यह साफ है कि प्रशांत कनौजिया को ऐसा कोई बोध नहीं था। मुश्किल यह है कि उनके जैसे तथाकथित पत्रकारों की कमी नहीं। प्रशांत कनौजिया भले ही स्वतंत्र पत्रकार के तमगे से लैस हों, लेकिन योगी आदित्यनाथ के संदर्भ में उनका ट्वीट पत्रकारिता को शर्मसार करने वाला ही अधिक था। उनके अन्य अनेक ट्वीट भी ऐसे हैं जो पत्रकारिता की आड़ में किए जाने वाले छिछोरेपन को ही बयान करते हैं। यदि उनके जैसे लोग पत्रकार के रूप में जाने जाएंगे तो फिर न तो पत्रकारिता की प्रतिष्ठा की रक्षा हो पाएगी और न ही स्वस्थ माहौल में विमर्श हो पाएगा।

इससे इन्कार नहीं कि उत्तर प्रदेश पुलिस ने प्रशांत कनौजिया को गिरफ्तार कर जरूरत से ज्यादा सख्ती दिखाई। पुलिस को गिरफ्तारी से बचना चाहिए था। कम से कम अब तो उसे यह आभास होना चाहिए कि आनन-फानन गिरफ्तारी से प्रशांत कनौजिया को न केवल अतिरिक्त प्रचार मिला, बल्कि उत्तर प्रदेश सरकार की किरकिरी भी हुई। एडिटर्स गिल्ड जैसी संस्थाओं का प्रशांत कनौजिया के पक्ष में खड़ा होना समझ में आता है, लेकिन क्या इन संस्थाओं को यह नहीं देखना चाहिए कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर एक स्वतंत्र पत्रकार ने क्या किया? प्रशांत कनौजिया ने जो किया उसे पत्रकारिता के दायरे में रखना तो इस पेशे की साख से खेलना है। क्या एडिटर्स गिल्ड और ऐसी ही अन्य संस्थाओं को इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए कि पत्रकारिता के नाम पर इस पेशे को बदनाम करने वाले काम न होने पाएं? यह पहली बार नहीं है जब किसी को सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक पोस्ट के आरोप में गिरफ्तार किया गया हो। ऐसे मामले रह-रहकर सामने आते ही रहते हैं, लेकिन विडंबना यह है कि अभिव्यक्ति की आजादी की वकालत करने वाले अलग-अलग मामलों में भिन्न-भिन्न रवैया अपनाते हैं। इससे बड़ी विडंबना यह है कि कई बार अदालतें भी ऐसा करते दिखती हैं। आज जब सोशल मीडिया का दायरा बढ़ता जा रहा है और हर कोई अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहीं अधिक स्वतंत्र है तब ऐसी कोई व्यवस्था बननी ही चाहिए जिससे न तो अभिव्यक्ति की आजादी का दुरुपयोग हो सके और न ही जरूरत से ज्यादा कठोर कार्रवाई।

बेघरों को घर

झारखंड में बेघर लोगों को घर दिलाने के लिए सरकार ने बड़ी पहल की है। औद्योगिक शहर जमशेदपुर में सात एकड़ सरकारी जमीन पर ऐसे लोगों के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत फ्लैट बनाए जाएंगे। इससे उम्मीद बढ़ी है कि रांची एवं धनबाद समेत अन्य शहरों में भी योजना को आगे बढ़ाने की मुहिम जोर पकड़ेगी। वैसे भी 2022 तक हर बेघर को अपना घर मुहैया कराने की प्रतिबद्धता सरकार जता चुकी है। इस दिशा में प्रशासन के कदम आगे बढ़े भी हैं, लेकिन अपेक्षित लक्ष्य हासिल करने को यही काफी नहीं है। अभी तक काम औसत गति से होता आया है। कहीं-कहीं तो औसत रफ्तार से भी कम। इसलिए इस योजना को मिशन मोड में लाना होगा और काम की गति बढ़ानी होगी। सरकार मुकम्मल रोड मैप लाए। राज्य में कहां कितने लोग बेघर हैं और उनकी आय की श्रेणी क्या है। ऐसे लोगों को कहां पर और किस तरीके से मकान मुहैया कराने की योजना है, इसकी आधिकारिक सूची सार्वजनिक हो। बेशक सबसे ज्यादा जोर प्रधानमंत्री आवास योजना पर दिख रहा, क्योंकि यह योजना हर किसी के लिए मुफीद है। हालांकि जमीन की कमी इसकी राह में बड़ा रोड़ा है। इसीलिए सामूहिक फ्लैट निर्माण पर सरकार जोर दे रही है। जमीन की समस्या के हल के लिए जरूरी है कि बेकार पड़ी या अतिक्रमित सरकारी जमीन को इस योजना के नाम कर दिया जाए। इसके आवंटन का काम युद्ध स्तर पर हो। नियमों का सरलीकरण करते हुए लोगों को वित्तीय मदद हासिल करने की प्रक्रिया को भी सुगम बनाया जाए। सिंगल विंडो सिस्टम को प्रभावी बनाकर इस काम को और आसान किया जा सकता है। निजी क्षेत्र की भागीदारी पर भी विचार किया जा सकता है। निर्माण कार्य से लेकर पूरी प्रक्रिया में पारदर्शिता, निर्माण की गुणवत्ता और बिचौलियों को नहीं पनपने देना योजना के लिए एक बड़ी चुनौती होगी। साथ ही यह भी देखना होगा कि काम तय समय सीमा में पूरा हो जाय। इन सबके अलावा योजना का जमीनी स्तर तक प्रचार-प्रसार भी होना चाहिए।

छल भरी राजनीति का तिरस्कार

प्रदीप सिंह

2019 का जनादेश लेफ्ट लिबरल समूह और उनके सहारे और समर्थन से की जाने वाली दोगली राजनीति का तिरस्कार है

लोकसभा चुनाव के नतीजों के बाद राजनीतिक और बौद्धिक समाज के एक छोटे से तबके ने तो यह अहसास कर लिया कि वह अपनी ही बनाई दुनिया में रह रहा था और इस कारण जमीनी हकीकत से कट गया था, लेकिन इसी तबके का एक हिस्सा अभी भी प्रचंड जनादेश को स्वीकार करने की बजाय उसके अस्वीकार के तर्क खोज रहा है। उसकी ओर से तरह-तरह के तर्क दिए जा रहे हैं। सबका सार यह है कि मोदी भले ही फिर से प्रधानमंत्री बन गए हों, लेकिन यह उनकी जीत नहीं है। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी के मुताबिक मोदी झूठ और नफरत से जीते हैं। मशहूर अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन से लेकर शरद पवार तक इस जीत को कमतर बताने की होड़ में शामिल हैं। वास्तव में जो आईना उन्हें सच्चाई दिखा रहा है वे उस आईने को ही तोड़ना चाहते हैं। पिछले कुछ सालों में भारत में अमर्त्य सेन की पहचान नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री से ज्यादा एक राजनीतिक कमेंटेटर की बनी है। वे ऐसे राजनीतिक पंडितों के अगुआ बन गए हैं जिनकी यह दृढ़ मान्यता है कि भाजपा और मोदी कुछ अच्छा कर ही नहीं सकते। यदि मोदी कुछ ऐसा करते हैं जिसकी तारीफ हो रही हो तो उसमें मीनमेख निकालने की कोशिश करो। उस पर अविश्वास जताओ। मोदी की प्रशंसा में एक भी शब्द बोलना ऐसे लोगों के लिए कुफ्र है।

अर्थशास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार पाने वाले रिचर्ड थेलर कहते हैं कि लोगों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वे अपनी बात को प्रमाणित करने वाले ही साक्ष्य खोजते हैं। इसके विपरीत मिलने वाले तथ्यों पर वे ध्यान नहीं देते। उन्होंने इस प्रवृत्ति को संपुष्टि पूर्वाग्रह (कन्फर्मेशन बायस) कहा है। अमर्त्य सेन के मुताबिक मोदी की जीत हिंदू राष्ट्रवाद की जीत है, पर हिंदू राष्ट्रवाद ने सिर्फ सत्ता हासिल की है। यह उसकी वैचारिक जीत नहीं है। सेन जैसे लोगों का मानना है कि उनका आइडिया ऑफ इंडिया अक्षुण्ण है। ऐसे लोगों की यह भी धारणा है कि भाजपा ने पैसे, मीडिया और तकनीक की ताकत से लोगों को भ्रमित कर दिया। शरद पवार जैसे कारोबारी नेता भी हैं जो मतदाता की आवाज सुनने-समझने के बजाय ईवीएम पर शोध कराने जा रहे हैं। यह बात और है कि उनके भतीजे यह कह रहे हैं कि ये सब बेकार की बात है। उधर असदुद्दीन ओवैसी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि भाजपा ने ईवीएम नहीं, हिंदू मस्तिष्क में सेंध लगाकर चुनाव जीता।

लेफ्ट लिबरल बुद्धिजीवी यह मानकर चलते आए हैं कि इंडिया का आइडिया एक ही हो सकता है। वे भारत की सबसे बड़ी ताकत विविधता को भी नकारते हैं। उन्हें समझ में ही नहीं आ रहा कि इस विचार का राजनीतिक लाभ मिलना खत्म हो चुका है। विचारों में समय और देश काल की परिस्थिति के अनुसार बदलाव न आए तो वे ठहरे हुए पानी की ही तरह सड़ जाते हैं। सवाल है कि यह बदलाव आया कैसे? दरअसल यह बदलाव छल में छेद करने से आया। प्रधानमंत्री मोदी ने संसद के सेंट्रल हॉल में अपने भाषण में कहा कि लंबे समय से गरीबों से छल हो रहा था।

अवधेश राजपूत

उसमें हमने छेद कर दिया। वह यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा कि अल्पसंख्यकों के साथ भी छल हो रहा है। इसमें भी छेद करने की जरूरत है। उनकी इन दोनों बातों से जाहिर है कि उन्हें पता है कि समस्या क्या है और उसका समाधान क्या है। उन्होंने गरीबों के साथ हो रहे छल में छेद करके जाति की राजनीति पर सत्ता भोगने वालों के लिए स्थाई वनवास का इंतजाम कर दिया है। मुसलमानों के साथ हो रहे छल में छेद से धर्मनिरपेक्षता की आड़ में चल रही मुस्लिम तुष्टीकरण की सांप्रदायिक राजनीति में छेद करना उनका अगला लक्ष्य है।

पिछले सत्तर सालों से देश में एक अजीब तरह का विमर्श चल रहा था। मुस्लिम तुष्टीकरण की राजनीति धर्मनिरपेक्षता का पर्यायवाची बन गई थी। जाति की राजनीति को सामाजिक न्याय की राजनीति का नाम दिया गया, पर हिंदू की बात करना सांप्रदायिकता की राजनीति माना गया। प्रधानमंत्री ने दो तरह के छल का तो उल्लेख किया, लेकिन उन्होंने शायद जानबूझकर तीसरे छल की बात नहीं कही। यह वह छल है जो इस देश के हिंदुओं के साथ हो रहा था। हो सकता है कि उन्होंने इस छल का जिक्र इसलिए भी न किया हो कि इस छल में छेद करने का आधार लेफ्ट लिबरल तबके ने अपनी दोगली नीति से तैयार किया है। हिंदुओं को यह छल समझ में तो आ रहा था, पर ऐसा कोई नेता नहीं मिल रहा था जिस पर वे भरोसा कर सकें। इस बात को अखलाक की हत्या के मामले पर उठे तूफान से समझा जा सकता है। अखलाक की हत्या के बाद देश में अवार्ड वापसी का जो दौर शुरू हुआ उसने ऐसा माहौल बनाया, मानो मोदी और भाजपा से ज्यादा असहिष्णु दुनिया में कोई नहीं है। हिंदुओं पर इस घटना का असर मुसलमानों से ज्यादा हुआ। अखलाक एक व्यक्ति था, लेकिन उसकी हत्या को देश के पूरे मुस्लिम समुदाय पर आक्रमण के रूप में पेश किया गया। उसकी मौत से ज्यादा उसका धर्म महत्वपूर्ण हो गया। हिंदुओं की समझ में नहीं आया कि यह हो क्या रहा है? कश्मीर में सैकड़ों हिंदू मारे गए, लाखों निकाले गए, उनके घर जला दिए गए और उनकी महिलाओं के साथ दुष्कर्म हुआ, लेकिन किसी ने नहीं कहा कि यह हिंदुओं पर हमला है। सच तो यह है कि उन्हें हिंदू भी नहीं कहा गया। कहा यह गया कि वे कश्मीरी पंडित हैं। जैसे कश्मीरी पंडित किसी और धर्म के मानने वाले हों। लाखों हिंदुओं के साथ इतना सब हो तो वह 'हुआ तो हुआ।' हजारों सिखों के साथ हो तो 'हुआ तो हुआ।' यह कौन सा प्राकृतिक न्याय है? कौन सी संवैधानिक मान्यता है? पर संपुष्टि पूर्वाग्रह की प्रवृत्ति वाले इसे कैसे और क्यों समझेंगे? आखिर यह एक तथ्य है कि रह-रहकर यह साबित करने की भी कोशिश हुई कि कश्मीरी पंडित अपने पलायन के लिए खुद ही दोषी हैं।

2019 का जनादेश लेफ्ट लिबरल समूह और उनके सहारे और समर्थन से की जाने वाली राजनीति का तिरस्कार है। पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी को इस तिरस्कार की पहली किस्त मिली है। दूसरी साल 2021 में मिल सकती है। अब एक नया शिगूफा चला है कि विपक्ष बहुत कमजोर हो गया है और यह स्थिति जनतंत्र के लिए बहुत बड़ा खतरा है। ये तर्कवीर तब कहां थे जब आजादी के तीस साल तक लोकसभा में प्रतिपक्ष का कोई नेता ही नहीं था। इन लोगों ने विपक्ष और जनतंत्र के कमजोर होने का मुद्दा 1984 में क्यों नहीं उठाया? संसद में विपक्ष संख्या बल से नहीं, अपने प्रभावी दखल और सड़क पर संघर्ष की क्षमता से ताकतवर बनता है। पश्चिम बंगाल विधानसभा में भाजपा के केवल छह सदस्य हैं, लेकिन वे संसद से सड़क तक सबसे ताकतवर विपक्षी हैं। राहुल गांधी, अखिलेश, तेजस्वी, मायावती, शरद पवार, कुमारस्वामी एवं चंद्रबाबू नायडू जैसे नेताओं को जितना जल्दी समझ में आ जाए तो बेहतर कि यह जनादेश मोदी की राजनीति में विश्वास और उनकी राजनीति में अविश्वास का है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

सबसे ज्यादा जरूरी है समान पाठ्यक्रम

कृपाशंकर चौबे

एकसमान शिक्षा से तमाम विषमताओं को पाटने और साथ ही राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में भी मदद मिलेगी

नई शिक्षा नीति के रूप में देश को समान पाठ्यक्रम लागू करने, इतिहास के एकांगी पक्ष को दूर करने और नई पीढ़ी को देश की सांस्कृतिक थाती से भलीभांति परिचित कराने का एक अवसर मिला है। इस अवसर का सदुपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि शिक्षा के जरिये देश को संवारने के काम में पहले ही देर हो चुकी है। स्वतंत्र भारत में जिस चीज की सर्वाधिक अनदेखी हुई है वह है-प्राथमिक शिक्षा। स्वाधीनता से पहले प्राथमिक शिक्षा का एक कामचलाऊ ढांचा था। थोड़े-बहुत बदलाव के साथ वह जैसे-तैसे घिसटता रहा, किंतु हाल के दशकों में वह ढांचा जर्जर हो गया। सरकारी विद्यालय कहीं छत विहीन पड़े हैं तो कहीं शिक्षक विहीन। गांवों और शहरों के सरकारी विद्यालयों में संसाधनों की भारी कमी है। इसीलिए सरकारी उपक्रमों की रिक्तता को निजी स्कूल सहजता से भरते गए। निजी विद्यालय अच्छे भवन, शैक्षणिक प्रबंधन और व्यावसायिक कौशल के कारण बेहतर विकल्प देते हैं और इसीलिए अभिभावकों को सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। जाहिर है कि सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सीखने के वे अवसर मुहैया नहीं हैं जो निजी विद्यालयों यानी मिशनरी, कॉन्वेंट, पब्लिक, आवासीय अथवा इंटरनेशनल स्कूलों के विद्यार्थियों को उपलब्ध हैं। मिशनरी और कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे एक्टिव लर्निंग बोर्ड की सहायता से स्मार्ट क्लास रूम में पढ़ते हैं, वे ई-लर्निंग, ई-सामग्री, ई-क्लास के अभ्यस्त हैं, कंप्यूटर में पारंगत हैं। पब्लिक स्कूलों की तरह सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों को सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनके पाठ्यक्रम भी एक समान नहीं हैं, किंतु कालेजों में दाखिले के लिए उन्हीं विद्यार्थियों से उन्हें प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। दूसरी प्रतियोगी परीक्षाओं में भी दोनों को एकसमान मुकाबला करना पड़ता है। जब एकसमान सुविधा एवं शिक्षा नहीं दी गई तो प्रतियोगी परीक्षाओं में दोनों से एक समान प्रश्न पूछना क्या न्यायसंगत है? कहने की जरूरत नहीं कि सरकारी विद्यालय हों अथवा निजी, सर्वत्र एक समान पाठ्यक्रम लागू किया जाना चाहिए। तभी विषमता की खाई पटेगी और तभी सभी विद्यार्थी एक धरातल पर नजर आएंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के प्रारूप में कौशल और हुनर पर जितना जोर दिया गया है उतना ही जोर नियमित विषयों के पाठ्यक्रमों में एकरूपता कायम करने पर भी देना चाहिए। नियमित विषयों के पाठ्यक्रमों के अलावा विद्यार्थियों को संस्कारी, संयमी और अनुशासित बनाने के लिए स्वच्छता अभियान, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक वानिकी और अधिकार-कर्तव्य जागरूकता कार्यक्रम जैसी पाठ्यचर्याएं भी शामिल की जानी चाहिए। इन पाठ्यचर्याओं से विद्यार्थी

अनुशासन के महत्व को जान सकेंगे। वे भारत, भारतीयता, देश के महापुरुषों को जान सकेंगे। वे मानव मूल्यों का महत्व जान सकेंगे। ये पाठ्यचर्याएं विद्यार्थियों को शिक्षित बनाने के साथ ही समर्थ भी बनाएंगी। इससे समरस भारत के निर्माण में मदद मिलेगी। पाठ्यक्रम तैयार करते समय यह ध्यान भी रखा जाना चाहिए कि उसे पढ़कर विद्यार्थी अपने अतीत और सांस्कृतिक थाती से भलीभांति परिचित हो सकें।

केंद्रीय बोर्डों से लेकर राज्यों के बोर्डों में अभी जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह एकांगी है। नई शिक्षा नीति को लागू करते समय इतिहास के एकांगी पक्ष को दूर करने का एक अवसर मिला है। इसी तरह भारतीय संस्कृति के उद्गम स्रोत, वैदिक समाज दर्शन, उपनिषद, भगवद्गीता, वेदांत, सिंधु सभ्यता बनाम वैदिक सभ्यता, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, सिख संस्कृति और इस्लाम संस्कृति से विद्यार्थियों को भलीभांति परिचित कराने वाला पाठ्यक्रम बनाने का भी यह अवसर है। राष्ट्रीय स्तर पर बनने वाले पाठ्यक्रम की अस्सी प्रतिशत सामग्री राज्यों में अनिवार्यतः स्वीकार की जाए। बीस प्रतिशत सामग्री स्थानीय महत्व एवं विरासत को ध्यान में रखते हुए शामिल की जा सकती है। जब तक पूरे देश में कम से कम अस्सी प्रतिशत पाठ्यक्रम एक समान नहीं लागू होगा तब तक एक समान शिक्षा व्यवस्था नहीं लागू हो सकेगी। एक समान शिक्षा व्यवस्था लागू होने पर राष्ट्रीय एकता को भी मजबूती मिलेगी। एक समान पाठ्यक्रम बनाने और उसे लागू करने के समानांतर प्रश्न पत्र और अंक देने का ढांचा भी एक समान होना चाहिए। केंद्रीय बोर्ड अंक देने के मामले में अतिशय उदारता दिखाते हैं। इसी कारण राज्यों के बोर्ड से उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों के अंक केंद्रीय बोर्डों की तुलना में कम होते हैं। केंद्रीय और राज्यों के शिक्षा बोर्डों के प्रश्न पत्र निर्माण, उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन और अंक देने की पद्धति में भी एकरूपता आवश्यक है। नई शिक्षा नीति की सफलता इस पर निर्भर करेगी कि वह देशभर में एक समान पाठ्यक्रम लागू करने और सबको एक समान शिक्षा का अवसर देने की राह को कितना सुगम बनाती है?

मातृभाषा में शिक्षा नहीं पाने के चलते बच्चे शैक्षिक उपलब्धि में पिछड़ जाते हैं। ज्ञानार्जन और एक दूसरी भाषा को सीखना तभी फलीभूत हो सकता है जब बच्चे के पास अपनी मूल भाषा की दक्षता हो। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के प्रारूप में बच्चों को कम से कम पांचवीं कक्षा तक मातृभाषा में पढ़ाने की बात कही गई है। प्रारूप में कहा गया है कि बच्चों को प्री-प्राइमरी से लेकर कम से कम पांचवीं तक और वैसे आठवीं तक मातृभाषा में ही पढ़ाना चाहिए। प्री-स्कूल और पहली कक्षा में बच्चों को तीन भारतीय भाषाओं के बारे में भी पढ़ाना चाहिए जिसमें वह उन्हें बोलना सीखे और उनके अक्षर पहचाने और पढ़े। तीसरी कक्षा तक मातृभाषा में ही लिखे और उसके बाद दो और भारतीय भाषाएं लिखना भी शुरू करे। अगर कोई विदेशी भाषा भी पढ़ना और लिखना चाहे तो यह इन तीन भारतीय भाषाओं के अलावा चौथी भाषा के तौर पर पढ़ाई जाए। भारत एक बहुभाषी देश है। यहां संस्कृत, तमिल और फारसी जैसी भाषाएं हैं जिनकी बड़ी प्राचीन परंपराएं हैं और विपुल साहित्य भी है। ये सभी भाषाएं भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशिष्टता को संजोये हुए देश की बहुरंगी छटा प्रस्तुत करती हैं। नई शिक्षा नीति के प्रारूप में भाषा की सहायता से सामाजिक-सांस्कृतिक एका की ओर बढ़ने का प्रस्ताव दिया गया है ताकि विद्यार्थी को भाषा के अध्ययन के क्रम में प्रत्येक संस्कृति का परिचय मिले और सांस्कृतिक संवेदना को पनपने का भी अवसर मिले। कहना न होगा कि सांस्कृतिक अनभिज्ञता से निपटने के लिए भाषा और संस्कृति को शिक्षा में स्थापित करना एक बड़ा कदम होगा। भाषाओं की विविधता और उनके बीच संवाद स्थापित करने में इससे मदद मिलेगी। भारतीय भाषाओं में एक सहकार संबंध भी कायम होगा।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि में प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

कागज का साथ

जैसे ही बच्चा थोड़ा समझदार होता है, वह कागज के संपर्क में आ जाता है। अखबार, पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें आदि के साथ खेलने लगता है। कागज हर बच्चे के बचपन का वह खिलौना है जिसे खिलौना कभी माना ही नहीं जाता। कागज बच्चे से लेकर बड़ों को जीवन की अमूल्य सीख देता है। जब बच्चे बारिश में कागज की कश्ती बहाते हैं तो उनकी सोच को विस्तार मिलता है। जब वे कागज को हवाई जहाज का रूप देते हैं तो उनके सपनों में पंख लग जाते हैं। और जब कागज फूलों का रूप लेते हैं तो वे उनके तन-मन को प्रफुल्लित कर देते हैं। अब कागज की अधिकतर वस्तुएं डिजिटल होती जा रही हैं जैसे ई-बुक, ई-अखबार, ई-पत्रिकाएं आदि। बेशक इन सबसे ज्ञान तो बराबर मात्रा में प्राप्त होता है, लेकिन जो आनंद पुस्तकों के पन्ने पलटने में, कॉपी पर चित्र बनाने में है, वह कहीं नहीं। कागज ही हर बच्चे की पहली पाठशाला होता है। जो बच्चे कागज के अधिक संपर्क में रहते हैं, उसके माध्यम से तरह-तरह के कार्य करते हैं। ऐसे बच्चों का मानसिक विकास तेजी से होता है। ऐसे बच्चे आगे चलकर महान लेखक, चित्रकार और कलाकार बनते हैं। जब तक डिजिटल साधनों का आविष्कार नहीं हुआ था, तब कागज ही हर तरह के संदेश का एक जरिया होता था।

कागज वह शक्तिशाली हथियार है, जिसका सही इस्तेमाल करके व्यक्ति पूरे विश्व को बदल सकता है। बर्क हेजेस कागजों से बनी पुस्तक को पूरा जीवन समझते हैं और कहते हैं कि सही समय पर सही पुस्तक पढ़ने से आपका जीवन बदल सकता है। कागज के महत्व को जानें, समझें और इसे बचाने की कोशिश करें। आज कागज की दुनिया सिमट रही है। वह डिजिटल प्लेटफॉर्म का रूप ले रही है, लेकिन जिस तरह मां की जगह कोई नहीं ले सकता, उसी तरह कागज का स्थान भी कोई नहीं ले सकता। कागज के साथ जुड़ें, सबको जोड़ें और इसे बचाने के लिए अधिक से अधिक पेड़ लगाएं। कागज का साथ व्यक्ति को जीवन की नई ऊंचाइयां प्रदान करता है। यह व्यक्ति का ऐसा साथी है जो उसके तनाव को कम करता है और उसकी बुद्धि को लगातार विकसित करता रहता है। तो फिर देर किस बात की है, अपने इस साथी के साथ समय बिताइए और सारी खुशियां पाइए।

रेनू सैनी

नशे की गिरफ्त में देश

देवेंद्रराज सुथार

'यूथ इन आइसलैंड' अभियान की तर्ज पर भारत में भी नशे के खिलाफ लोगों में जागृति लाने के लिए अविलंब कदम की दरकार है

हाल में ही सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के निर्देश पर एम्स के नेशनल ड्रग डिपेंडेंस ट्रीटमेंट सेंटर द्वारा तैयार की गई मैग्नीट्यूड ऑफ सब्सटेंस एब्यूज इन इंडिया नामक रिपोर्ट के अनुसार देश में साढ़े सात करोड़ ऐसे लोग हैं जो नशे की गंभीर गिरफ्त में हैं। यानी उन्हें जल्द से जल्द उपचार की आवश्यकता है। राज्यों के अनुसार उत्तर प्रदेश में सबसे ज्यादा 4.2 करोड़ लोग शराब पीते हैं। दूसरे नंबर पर पश्चि२म बंगाल है, जहां 1.4 करोड़ लोग हैं और तीसरे स्थान पर मौजूद मध्य प्रदेश में 1.2 करोड़ लोग शराब पीते हैं। नशे की इस गिरफ्त में पुरुषों के साथ-साथ बच्चे और महिलाएं भी शामिल हैं। सर्वे के मुताबिक कुल आबादी के 27.3 फीसद पुरुष और 6.4 प्रतिशत महिलाएं शराब का सेवन करती हैं।

गौरतलब है कि इस सर्वे में 186 जिलों के दो लाख से अधिक परिवारों को शामिल किया गया है। भारत में नशे की लत के ये आंकड़े दिसंबर 2017 से अक्टूबर 2018 के बीच एकत्र किए गए हैं। आज की रोजमर्रा की जिंदगी में लोगों में तनाव और परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता कम होती जा रही है, वे सूझबूझ खो रहे हैं और नादानी में गलत कदम की ओर बढ़ रहे हैं। नशा के खतरनाक पहलू सामने आने के बाद भी न तो नशे को लेकर सरकार गंभीर है और न ही नशा करने वाले। क्या सचमुच सरकार चाहती है कि लोग नशे का सेवन न करें? अगर हां, तो फिर वह इन चीजों के उत्पादन पर रोक क्यों नहीं लगा रही है?

नशे पर प्रतिबंध 'नशा जानलेवा है' के विज्ञापन जारी करने से ज्यादा नशा से प्राप्त होने वाले भारी भरकम राजस्व के लोभ को छोड़ने से लगेगा। सोचना होगा कि हमारे लिए राजस्व के रूप में मिलने वाली राशि महत्वपूर्ण है या देश के विकास का आधार युवा शक्ति। हमें आइसलैंड से सीखना चाहिए जो नशे को जड़ से मिटाने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध है। दरअसल 1998 में आइसलैंड में 'यूथ इन आइसलैंड' नाम से नशा मुक्ति अभियान शुरू किया गया, जिसका उद्देश्य युवाओं में शराब और सिगरेट की लत को दूर करना बनाया गया। इस अभियान में शराब, सिगरेट की लत के बारे में लगातार अध्ययन किया गया। इसके आधार पर सामुदायिक पहल और नगर निगम के जरिये शराब और तंबाकू के सेवन के खतरे के बारे में उन्हें बताने की मुहिम चलाई गई। यहीं नहीं 2002 में सरकार ने एक और कदम उठाया। 12 साल से कम उम्र के बच्चों का रात के आठ बजे के बाद सड़कों पर अकेले बाहर निकलने पर रोक लगा दी गई। वहीं 13 से 16 साल की उम्र वालों के लिए रात के 10 बजे के बाद बाहर निकलने पर पाबंदी लगाई गई। हालांकि आपात स्थिति में बच्चे भी अकेले कहीं भी आ-जा सकते हैं। देखते ही देखते आइसलैंड का ये कार्यक्रम इतना कामयाब हुआ कि 2006 में इसकी तर्ज पर 'यूथ इन यूरोप' कार्यक्रम शुरू किया गया। आज दुनिया के 30 से अधिक देश इस अभियान से जुड़कर अपने देश को नशे से बचाने में लगे हुए हैं। बेशक 'यूथ इन आइसलैंड' अभियान की तर्ज पर भारत में भी नशे के खिलाफ लोगों में जागृति लाने के लिए अविलंब कदम की दरकार है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

जरूरतमंद को दी जाए सहूलियत

मुफ्तखोरी की संस्कृति को बढ़ावा शीर्षक से लिखे अपने लेख में प्रेमपाल शर्मा ने जिस मुफ्तखोरी की बात की है, उससे बचा जाना चाहिए। वस्तुतः भारत का जो सामाजिक ढांचा है उसके अनुरूप आज भी इस देश की आबादी का लगभग 20 प्रतिशत अति गरीब वह तबका है जो दो जून की रोटी के लिए भी मोहताज रहता है। इसी तरह देश का 40 प्रतिशत निम्न वर्गीय किसान-मजदूर वर्ग जैसे-तैसे अपनी रोजी-रोटी का जुगाड़ करके बहुत ही सीमित संसाधनों के साथ अपना जीवन गुजारने को मजबूर है। ऐसे में यदि कुछ सहूलियत देनी है तो देश की इस आधी से अधिक गरीब और अति गरीब आबादी को दी जानी चाहिए। इस दृष्टि से दिल्ली प्रदेश की केजरीवाल सरकार ने अमीर-गरीब हर महिला को मेट्रो और डीटीसी बसों में मुफ्त यात्रा करने की जो सुविधा दी है, उससे अधिकांशतः नौकरीपेशा साधन संपन्न उन्हीं महिलाओं को फायदा होगा जो अपने काम से मेट्रो या डीटीसी की एसी बसों में प्रतिदिन यात्रा करती हैं। अब इससे दिल्ली सरकार को कुछ लाभ हो या न हो, लेकिन सरकारी खजाने पर इस मुफ्त यात्रा के बदले करीब सात-आठ सौ करोड़ रुपये का बोझ जरूर आ जाएगा, जो कि जनता के पैसे की बर्बादी के सिवाय कुछ नहीं है। इस संबंध में देश के विभिन्न राज्यों को मोदी सरकार की विकास योजनाओं से सीख लेनी चाहिए जो अधिकांशतः केवल देश की गरीब और अति गरीब आबादी के लिए ही होती हैं। राज्य सरकारों को अपने राजस्व को जनकल्याणकारी ठोस विकास योजनाओं में व्यय करना चाहिए, न कि मुफ्तखोरी को बढ़ावा देने वाली योजनाओं में। देश के साधन संपन्न वर्ग को सरकारी खजाने से सहूलियत देकर मुफ्तखोरी का आदी बनाने से कोई फायदा नहीं है। केजरीवाल सरकार ने मेट्रो और डीटीसी बसों को दिल्ली की सभी वर्ग की महिलाओं के लिए फ्री करके मुफ्तखोरी की ओर जो कदम बढ़ाया है वह सीमित साधनों वाले भारत जैसे विकासशील देश की आर्थिक सेहत के सर्वथा विपरीत है। सरकारी सहायता के हकदार केवल जरूरतमंद लोग ही हैं और इसी वर्ग को इस तरह की सहायता मिलनी चाहिए।

डॉ. वीपी पाण्डेय, अलीगढ़

सबक ले विपक्ष

लोकसभा चुनाव में भाजपा ने हरियाणा की सभी दस सीटें जीत कर विपक्ष के खेमे में खलबली मचा दी है। बेशक लोकसभा चुनाव में मोदी लहर का प्रभाव अपने चरम पर रहा, लेकिन इस हार में विपक्ष की अपनी गलतियां भी एक कारक रही हैं। इनेलो पार्टी चुनाव से पहले ही दोफाड़ हो गई। इसलिए उसका पारंपरिक वोट बैंक भी बंट गया। परिणाम स्वरूप पार्टी अपनी दोनों सीटें गंवा बैठी। वैसे यह इनेलो पार्टी का विभाजन नहीं, बल्कि पारिवारिक बंटवारा था। जींद के विधानसभा चुनाव में भी यही कहानी रही थी। जजपा और इनेलो दोनों ने अपने उम्मीदवार उतारे और भाजपा दिवंगत इनेलो विधायक के पुत्र के सहारे जीत गई। कांग्रेस भी अपनी एकमात्र लोकसभा सीट हार गई। अब विधानसभा चुनाव का शंखनाद होने वाला है। यदि विपक्ष ने अपनी गलतियों से सबक नहीं लिया तो विधानसभा चुनाव में उसकी स्थिति और भी बदतर हो सकती है। यदि विपक्ष को भाजपा को रोकना है तो जजपा और इनेलो को फिर अपने उसी प्रतिरूप में लौटना होगा। कांग्रेस भी खेमों में बंटी है, ज